ISSN: 2349-4905
अंक-22, जुलाई-दिसम्बर, 2020

हिमांजलि

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,
शिमला के राजभाषा एकक की अर्धवार्षिक पत्रिका

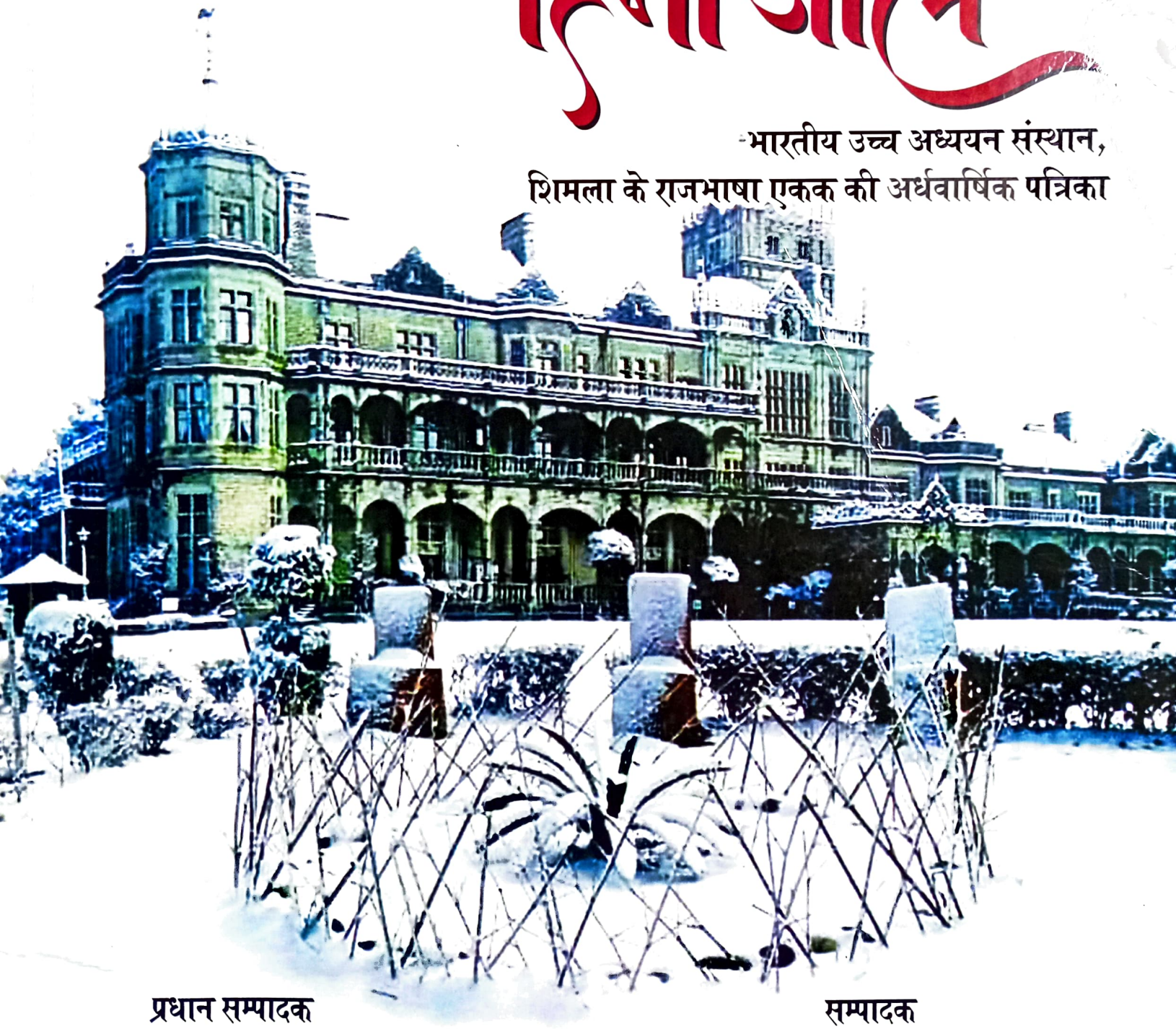

प्रधान सम्पादक
मकरंद आर. परांजपे

सम्पादक
माधव हाड़ा • बलराम शुक्ल

ISSN : 2349-4905

हिमांजलि

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के राजभाषा एकक की अर्धवार्षिक पत्रिका

अंक-22, जुलाई-दिसम्बर, 2020

प्रधान सम्पादक

मकरंद आर. परांजपे
निदेशक, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

सम्पादक

माधव हाड़ा
अध्येता
बलराम शुक्ल
अध्येता

संयोजक

राजेश कुमार
हिन्दी अनुवादक

प्रकाशक

सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला-171005
दूरभाष : 0177-2831379
फ़ैक्स : 0177-2830628
वेबसाइट : www.iias.ac.in

सह-प्रकाशक

वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
फ़ोन : +91 11 23273167, 23275710
वेबसाइट : www.vaniprakashan.com

मुद्रक

थॉमसन प्रेस (इंडिया) लि. में मुद्रित

प्रकाशित रचनाओं, लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के हैं, उनसे संस्थान व सम्पादक मण्डल का सहमत या असहमत होना आवश्यक नहीं है।

अनुक्रम

पुरोवाक्

रमेश पोखरियाल : भारत के शिक्षा मन्त्री की असाधारण कहानी 3
मकरंद आर. परांजपे (निदेशक)

सम्पादकीय 5
माधव हाड़ा/बलराम शुक्ल

कवि और कविताएँ 7
अष्टभुजा शुक्ल

आत्मकथांश

पूर्व-पीठिका (आत्मकथा : धारा के विपरीत का एक अध्याय) 12
गोविन्द मिश्र

हिमायन

उत्तराखण्ड हिमालय में नन्दा भक्ति एवं राजजात 20
दाताराम पुरोहित

कुमाऊँनी लोक साहित्य का वैशिष्ट्य 'लोकगाथाएँ' 25
कुलीन कुमार जोशी

शिमला का वानस्पतिक वैविध्य 29
सुशीला शर्मा

शिमला स्मृतियाँ 32
प्रशान्त कुमार

आलेख

गणित बनाम मैथमेटिक्स 34
चन्द्रकान्त राजू

पारम्परिक समीक्षा में कवि कालिदास 45
राधावल्लभ त्रिपाठी

प्रसाद के उपन्यास : सही माध्यम की खोज का सवाल 53
नवल किशोर

अवेस्ता परम्परा में हओम यस्न (सोमयज्ञ) 56
रमेश भारद्वाज, मीनाक्षी
कविता तथा संचार माध्यम का सम्बन्ध 61
रचना सिंह
मराठी कविता का 'घर' 64
अर्निका परांजपे
महाकवि माघ का कृषिशास्त्रीय पाण्डित्य 68
नीरज शर्मा, स्मिता शर्मा
साहित्य के सिनेमाई रूपान्तरण की सैद्धान्तिकी का विश्लेषण 73
अंकित पाठक
'हिन्दी आन्दोलन' का सामाजिक आधार 77
गणपत तेली
ध्वनि-सिद्धान्त और रामचरितमानस 83
अवनीश चन्द्र पाण्डेय
समकालीन हिन्दी कहानी में जनपदीय चेतना 87
मनोज कुमार पाण्डेय
हिन्दी उपन्यासों में इतिहास और वर्तमान की अन्तर्निहितता 90
(विशेष सन्दर्भ : भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास)
राम चरण मीना
स्त्री होने के निहितार्थ 93
रूबल मित्तल
यारगप छू 96
अभिषेक कुमार यादव

पुस्तक-समीक्षा

ठुमरी की ठनक और ठसक का दस्तावेज़ 101
मनीष मिश्रा

स्मरण

मानवीय संवेदनाएँ आज के परिप्रेक्ष्य में 103
केसर सिंह

प्रतिवेदन

संस्थान की अकादमिक, राजभाषा प्रचार-प्रसार व अन्य गतिविधियों का प्रतिवेदन (जुलाई-दिसम्बर, 2020) 105
राजेश कुमार

महाकवि माघ का कृषिशास्त्रीय पाण्डित्य

नीरज शर्मा, स्मिता शर्मा *

लोक तथा शास्त्र के सूक्ष्म अवेक्षण से होने वाली 'व्युत्पत्ति' अथवा 'निपुणता' काव्य की हेतुभूत मानी जाती है। वृहत्त्रयी के अन्यतम महाकाव्य 'शिशुपालवध' में महाकवि माघ का लोक एवं शास्त्रावेक्षण जन्य व्युत्पन्न वैदग्ध्य देखते ही बनता है। उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य के समन्वय में माघ की कृषिशास्त्रीय बहुज्ञता ने संस्कृत कवियों के तत्सम्बन्धी नैपुण्य को बहुत पीछे छोड़ दिया है। महाकवि माघ की कृषिशास्त्रीय बहुज्ञता तथा विद्वत्ता का पर्यालोचन प्राचीन भारतीय कृषिशास्त्रीय गौरव का भी ज्ञापक सिद्ध होता है। माघ के वर्णित कथानक विस्तार में प्रकृति तथा वस्तुवर्णन में यह ज्ञान-विज्ञान नितान्त दर्शनीय है।

'कृषि' शब्द के निहितार्थ में उससे सम्बद्ध सभी विषय समाहित होते हैं। 'कृषि' पद में कृषिभूमि, सिंचाई, बागवानी, फ़सल-उपज, पादप-रचना, रोग एवं प्रबन्धन, कृषि-पशुपालन सम्बन्ध आदि का परिज्ञान भी समाहित होता है अतः प्रस्तुत शोधपत्र में महाकवि माघ की आलंकारिक वर्णना में यथास्थान गृहीत इसी व्युत्पत्ति का अन्वेषण तथा प्रस्तुतीकरण किया गया है।

शिशुपालवध के नायक श्रीकृष्ण के द्वारिकाधीश बनने से पूर्व की गोचारण-गोवर्धन लीला में प्राचीन भारतीय कृषि-संस्कृति का गौरव निहित रहा है साथ ही उनके अग्रज श्री बलरामजी का आयुध भी इसी के महत्त्व का गुणगान करता है। हलधर बलराम जी का हल प्रकृति और समाज के रक्षण और पोषण का सर्वोच्च प्रतीक है। कृषि समृद्धि ही राष्ट्र समृद्धि का मूल कारण होती है, यह तथ्य सनातन-संस्कृति में प्रतिष्ठित है।

माघ वर्णन करते हैं कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के उपरान्त सभी को छह रसों से युक्त स्वादिष्ट भोजन परोसा गया। वह भोजन अनेक प्रकार के मसालों के मिश्रण से पका कर संस्कृत किया गया था तथा नैसर्गिक रूप से यथाजात आस्वाद्यमान प्राकृत फलादि को नियत पात्रों में रखकर ग्रहण कराया गया था। यहाँ खेती और बागवानी दोनों का संकेत है जो आस्वाद्यमान नाट्यरस के समान सामाजिकों को आनन्दित कर रहा था :

स्वादयन् रसमनेकसंस्कृतप्राकृतैरकृतपात्रसङ्करैः।
भावशुद्धिसहितैर्मुदं जनो नाटकैरिव बभार भोजनैः।।

इन्हीं आस्वाद्यमान संस्कृत और प्राकृत वस्तुओं की उत्पत्ति, स्थिति, विकास एवं सम्बन्धित वर्णनों का निरूपण एवं विध किया जा सकता है :

कृषि के लिए अपरिहार्य प्राथमिक आवश्यकता भूमि की होती है। शिशुपालवध के विविध प्रसंगों में चार प्रकार की भूमि का उल्लेख है। ये हैं—ऊसर, उर्वर, पर्वतीय तथा तटीय। ऊसर भूमि पर वर्षाधारित खेती होती है। उष्णकटिबन्धीय मरुस्थल से लेकर द्वारिका के तटीय क्षेत्र तक इन चारों की भूमि वर्गों की पारिस्थितिकी देखी जा सकती है।

माघ लिखते हैं कि जिस तरह समुन्नत जल बरसाने वाला मेघ ऊसर भूमि को नहीं त्यागता है उसी प्रकार युधिष्ठिर गुणहीन याचकों को भी अभीष्ट दान दे रहे थे। सर्वसस्याढ्या सिंचित अथवा नादेय भूमि उर्वर कहलाती है। माघ ने दो स्थानों पर 'उर्वर' शब्द का प्रयोग किया है। रैवतक वर्णन प्रसंग में फलोद्यानादि के लिए उपयुक्त पर्वतीय भूमि का वर्णन किया गया है तथा श्रीकृष्ण के द्वारिका के प्रस्थान प्रसंग में ताल-तमालादि से आच्छादित तटीय भूमि का वर्णन किया गया है।

अभीष्ट फ़सल के लिए उपयुक्त भूमि का चयन करने के उपरान्त उसे खेती के लिए तैयार किया जाता है। उन्नत और अवनत भूमि को समतल करने के बाद ही बुवाई की जाती है। सेना के प्रयाण के समय रथचक्रों से जो भूमि नतोन्नत या विदीर्ण हो गयी थी वह पश्चात् हाथियों के पैरों तले दब जाने पर समतल हो गयी थी। किसानों द्वारा हलप्रवहण करने पर भग्नोन्नत भूमि पर पटेला चलाकर उसे पुनः पूरित-समतल किया जाता है। कृषि प्रक्रिया का ऐसा अपूर्व सूक्ष्म अवेक्षण माघ के अतिरिक्त किसी कवि द्वारा शायद ही किया गया हो—

पादैः पुरः कूबरिणां विदारिताः प्रकाममाक्रान्ततलास्ततो गजैः।
भग्नोन्नताऽन्तरपूरितान्तरां बभुर्भुवः कृष्टसती कृता इव।।

भूमिचयन, हलप्रवहण, समतलीकरण के बाद बुवाई की जाती है। बीजों में श्रेष्ठ अंकुरण के लिए बुवाई के साथ ही सिंचाई कर दी जाती है जिससे भूमि में पर्याप्त नमी बनी रहे। जैसे किसान को बुवाई से पूर्व भू-संस्कार तथा जलसेक भविष्य में महान् फल प्रदान करते हैं उसी प्रकार युधिष्ठिर ने वैदिक मन्त्रोच्चारपूर्वक अभिषेकादि सत्क्रिया से शुद्ध सभी ऋत्विजों के लिए, संकल्प जल छोड़कर उन्हें धन बाँटा, जो भविष्य में स्वर्गादि फलों का प्रदाता था। बीजरूप में शास्त्रोक्त विधि से सत्कारपूर्वक संकल्प जलमोचन के साथ दिया हुआ दान भी अनन्तगुणा होकर फलदायी होता है।

*सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में संस्कृत के विभागाध्यक्ष।

ऋषि और कृषि संस्कृति का ऐसा अद्भुत समन्वय स्थापित करने की सामर्थ्य केवल महाकवि माघ की लेखनी में ही दृष्टिगोचर होती है :

वारिपूर्वमखिलासु सत्क्रियालब्धशुद्धिषु धनानि बीजवत्।
भावि बिभ्रतिफलं महद्द्विजक्षेत्रभूमिषु नराधिपोऽवपत्।।

राजनय की दृष्टि से भी यह ऐतिहासिक सत्य है कि खाद-पानी से सिंचित भूमि की तरह संरक्षित ब्राह्मण राज्य से प्राप्त वृत्ति-सम्मानादि की तुलना में अनन्तगुणा समृद्धि राज्य को लौटाते रहे हैं। भारत को महान् भौतिक और सांस्कृतिक समृद्धि प्रदान करने वाले समस्त ज्ञानानुशासन निःस्पृह-निष्काम ब्राह्मणों की ही देन है।

बुवाई अथवा वपन के बाद फ़सल का पोषण तथा उसका रक्षण आवश्यक होता है। पोषण के लिए प्राचीन भारत में सतत विकास का सनातन मॉडल था। खेती और पशुपालन परस्पर सम्बद्ध थे। भूमि में उर्वरता निरन्तर रहती थी अतः भूमि को 'उर्वरा' कहा जाता है। महाकवि माघ ने अनेक पशुओं का वर्णन किया है, जो कृषि-प्रक्रियाओं के सहयोगी थे तथा भारवाहक भी थे। इन सभी का मल-मूत्र भूमि की उर्वरता में वृद्धि करता है। वृषभ, महिष, रवण (ऊँट), मेष का पालतू पशुओं में उल्लेख है। बैल और ऊँट का पाँच-पाँच बार उल्लेख है। संस्कृत की कृषिशास्त्रीय परम्परा में बैल को कृषि का मूल कहा गया है। यह किसान की सभी कामनाओं का पूर्तिकर्ता माना जाता था। सौरभेय की पूजा-स्तुति और शोभायात्रा का शास्त्रीय विधान था। कार्तिक प्रतिपदा को पूरे देश में यह आयोजन होता था :

सौरभेय महासार वृषराजमित्युते।
भूकर्षणविधौ त्वं हि सहाय्यं कुरु ममानघ।।
वृषराज त्वमेवात्र धनधान्यादिवृद्धिकृत्।
धर्मरूपत्वमेवेह तस्मात् त्वां पोषयाम्यहम्।।

शास्त्रपरम्परा में वृषभ तो लोकपरम्परा में क्रमेलक का अत्यन्त महत्त्व है। मरुधरा में आज भी ऊँट खेती में तथा वाहन के रूप में काम आता है। छोटी-छोटी जोत वाले खेत ऊँटों द्वारा ही जोते जाते हैं। माघ ने शिशु ऊँट करभ के वर्णन के साथ-साथ ऊँटों के आहार-विहार का भी अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। उन्नत मुख, लम्बी गर्दन वाले ऊँट का पेड़ों पर ऊँचे लगने वाले नव पल्लवों को ओंठों को तेज़ी से हिलाते हुए खाने का यह वर्णन दर्शनीय है :

विभ्राणमायतिमतीमवृथा शिरोधिं
प्रत्यग्रतामतिरसामधिकं दधन्ति।
लोलोष्ठ मौष्ट्रकमुदग्रमुखं तरुणा
मभ्रंलिहानि लिलिहे नवपल्लवानि।।

गोसमृद्धि तथा कृषिसमृद्धि का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। गोमय श्रेष्ठ उर्वरक होता है। महाकवि माघ ने कर्षिणी श्री-भूमि तथा उसकी सन्तति दोनों को समृद्ध करने वाली गो का हृदयग्राही वर्णन किया है। प्रभातवर्णन में गोपवृन्दों द्वारा दधिमन्थन का दृश्य उपस्थित करते हुए माघ लिखते हैं जैसे समुद्ररूपी पात्र में मन्दराचल रूपी मथनी से, गम्भीर ध्वनि से मन्थन करते हुए जैसे चन्द्रमा को प्राप्त किया गया था उसी प्रकार गोपवृन्दों ने दही को मथ कर नवनीत प्राप्त किया :

द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले दधति
दधनि धीरानारवान्वारिणीव।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
कलशिमुदधिगुर्वीं वल्लवालोडयन्ति।।

द्वादश सर्ग में स्नेहपूर्वक अपने बछड़ों को चाटती हुई गायों का दूध दूहने वाले गोपालकों का यह स्वाभाविक वर्णन किसका चित्तहरण नहीं करता है :

प्रीत्या नियुक्ताँल्लिहतीः स्तनन्धयान्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः।
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पयश्चिरं दिध्यौ दुहतः स गोदुहः।।

इसी प्रसंग में माघ लिखते हैं कि श्रीकृष्ण ने गोसमूह से हुँकार करके निकलती हुई श्रेष्ठ जाति की गो (प्रशस्त गो) 'गोमतल्लिका' को देखा। संसार में सर्वाधिक दूध देने वाली देशी नस्ल की गाय 'गीर' प्रजाति की होती है, जो द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ के मार्ग में पायी जाती है। यदि जूनागढ़ को रैवतक मानेंगे तो निश्चय ही यह 'गीर' ही है अथवा माउण्ट आबू को रैवतक मानेंगे तो सांचौरी या नागौरी गाय हो सकती है। दोहन और मन्थन दोनों ही कार्य गोपांगनाओं के द्वारा नहीं होकर गोपालों द्वारा हो रहे थे अतः दूध की अधिक मात्रा को देखते हुए श्रीकृष्ण की दृष्टि में 'गीर' को ही 'गोमतल्लिका' मानना उचित होगा। गाय के अतिरिक्त मेष या भेड़ का भी वर्णन किया गया है। आज भी राजस्थान में रेबारी, गुर्जर प्रजाति द्वारा भेड़-बकरियों का पालन होता है तथा सतत उर्वरता की दृष्टि से किसानों द्वारा अपने खेत में रेवड़ के रात्रिविश्राम अथवा ठहराव का आग्रह इन घुमन्तुओं से किया जाता है।

माघ लिखते हैं कि जिस तरह समुन्नत जल बरसाने वाला मेघ ऊसर भूमि को नहीं त्यागता है उसी प्रकार युधिष्ठिर गुणहीन याचकों को भी अभीष्ट दान दे रहे थे। सर्वसस्याढ्या सिंचित अथवा नादेय भूमि उर्वर कहलाती है। माघ ने दो स्थानों पर 'उर्वर' शब्द का प्रयोग किया है। रैवतक वर्णन प्रसंग में फलोद्यानादि के लिए उपयुक्त पर्वतीय भूमि का वर्णन किया गया है तथा श्रीकृष्ण के द्वारिका के प्रस्थान प्रसंग में ताल-तमालादि से आच्छादित तटीय भूमि का वर्णन किया गया है।

शिशुपालवध में पशु-पक्षियों तथा बीमारियों से पौधों को बचाने का भी वर्णन किया गया है। धान के खेत की रखवाली करने वाली शालिगोप्याओं के मधुर गीत एवं एक तरफ़ मृग तो दूसरी तरफ़ शुकों से खेत की रक्षा करने में व्याकुल स्त्रियों का मनोहारी वर्णन किया गया है :

स व्रीहिणां यावदपासितुं गताः शुकान् मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम्।
कैदारिकाणाममितः समाकुलाः सहासमालोकयति स्म गोपिकाः।।

खेत की रखवाली करती गोपिका के मधुर गीत को मृग भी तन्मय होकर सुनना चाहते हैं। मृगों ने इसीलिए धान खाना छोड़ दिया। यदि वे धान चरते हैं तो गोपिका गाना छोड़ देगी तथा उन्हें भगाने के लिए दौड़ पड़ेगी। लोक जीवन का ऐसा आनन्द तो महाकवि माघ की उर्वर लेखनी से ही प्रसूत हो सकता है।

संस्कृत कृषिशास्त्र में पादप पोषण के लिए जिन जैविक उर्वरकों और विलयनों का विधान है, वे सभी प्रकृति में सहज उपलब्ध अपशिष्ट एवं पुनःचक्रीकरण पर आधारित हैं। इनमें पेड़-पौधों तथा पशु-पक्षियों के सभी तरह के अपशिष्ट सम्मिलित होते हैं। मल-मूल के अतिरिक्त अस्थि, मज्जा, रक्त, वसा, त्वचा, शल्कादि सभी का विशिष्ट उपयोग बताया गया है। महाकवि माघ ने शिशुपाल की गर्वोक्ति में गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण का रक्तपान उर्वराभूमि द्वारा किये जाने का वर्णन है। सर्वसस्याढ्याभूमि को ही उर्वरा कहा जाता है। प्राचीन कृषि में यज्ञ के द्वारा पेड़-पौधों के रोगाणु-विषाणुओं को नष्ट किये जाने का विधान प्राप्त होता है। शिशुपालवध में राजसूय यज्ञ में हवनीय पदार्थों की आहुति से उत्पन्न गन्ध के द्वारा प्राणियों के पाप-समूह को भस्मीभूत करने का वर्णन है :

पोषण के लिए प्राचीन भारत में सतत विकास का सनातन मॉडल था। खेती और पशुपालन परस्पर सम्बद्ध थे। भूमि में उर्वरता निरन्तर रहती थी अतः भूमि को 'उर्वरा' कहा जाता है। महाकवि माघ ने अनेक पशुओं का वर्णन किया है, जो कृषि-प्रक्रियाओं के सहयोगी थे तथा भारवाहक भी थे। इन सभी का मल-मूत्र भूमि की उर्वरता में वृद्धि करता है। वृषभ, महिष, रवण (ऊँट), मेष का पालतू पशुओं में उल्लेख है।

स्पर्शमुष्णमुचितं दधच्छिखी यद्दहाह हविरद्भुतं न तत्।
गन्धतोऽपि हुतव्यसम्भवाद्धेहिनामदहदोघमंहसाम्।।

संस्कृत कृषिशास्त्र में पौधों के वातज, पित्तज और कफज रोगों के उपचार के लिए विभिन्न प्रविधियाँ बताई गयी हैं। एक विशिष्ट उर्वरक-पोषक विलयन 'कुणपजल' माना जाता है। आजकल जैविक कृषि में घनामृत, जीवामृत आदि नामों से उसका उपयोग किया जाता है। शिशुपालवध में पौधों की अमृतजल से सिंचाई का एक उल्लेख मिलता है। अमृतजल की सिंचाई से पौधों में कल्पवृक्ष के समान विलक्षण फल-पुष्पादि की समृद्धि होती है। सेना के रैवतक पर पड़ाव प्रसंग में पेड़ की शाखाओं पर डाले गये वस्त्रालंकारों से वृक्षों की शोभा अमृत रस से सिंचित विचित्र फलों वाले कल्पवृक्ष के समान वर्णित की गयी है :

सिक्ता इवामृतजलेन मुहुर्जनानां
क्लान्तिच्छिदो वनवनस्पतयस्तदानीम्।
शाखावसक्तवसनाभरणाभिरामाः
कल्पद्रुमैः सह विचित्रफलैर्विरिजुः।।

अपेक्षानुसार सिंचाई के बिना खेती की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्राचीन भारत में अदेवमातृका कृषि के लिए सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास करने हेतु प्रावधान किये गये थे। जलाधारों के निर्माण के साथ-साथ वृष्टिज्ञान तथा निमित्तों का भी शास्त्र विकसित हुआ। महाकवि माघ ने ऋतुवर्णन प्रसंग में वर्षाऋतु-वृष्टिज्ञान का विदग्ध वर्णन किया है। कर्क-मकर संक्रान्ति, विद्युत-मेघ संयोग, मेघगर्जन आदि का आलंकारिक वर्णन किया गया है। मेघ निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए महाकवि माघ लिखते हैं कि जिस प्रकार मुनिवरों के द्वारा वेदोक्त अर्थ को ग्रहण कर प्रणीत होने वाली स्मृतियाँ पुनः वेदों का ही अनुसरण करती हैं—उन्हीं में प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार मेघों द्वारा समुद्र से जलग्रहण कर उत्पन्न हुई नदियाँ पुनः समुद्र का ही अनुसरण करती हैं अर्थात् उसी में प्रविष्ट हो जाती हैं :

उद्धृत्य मेघैस्ततोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव सम्प्रणीताः।
आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम्।।

महाकाव्य में मेघवृष्टि का हृदयावर्जक वर्णन किया गया है। बाणवृष्टि करते हुए श्रीकृष्ण का इन्द्रधनुष वाले जलवृष्टि करते मेघ के साथ अद्भुत चित्रण है :

शरवर्षीमहानादः स्फुरत्कार्मुककेतनः।
नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरदः।।

सिंचाई के लिए नदीजल के उपयोग हेतु उनके प्रवाहमार्ग को अवरुद्ध कर अपेक्षित ऊँचाई-नीचाई के आधार पर नहरें बनाकर जल को विपरीत और ऊँचे स्थानों की ओर ले जाया जा सकता है। शिशुपालवध में जलपरिवाह अथवा नहर के द्वारा जलमार्ग परिवर्तन का उल्लेख किया गया है।

महाकवि माघ की जलीय भू-आकृतियों से सम्बद्ध बहुज्ञता अत्यन्त दर्शनीय है। नदी तटबन्ध एवं जलसंरक्षणविषयक उनकी चेतना कविता में मुखरित होती है। महाकाव्य के द्वादश सर्ग में एक कलापक के द्वारा यमुना का भव्य गुणानुवाद किया गया है। नदियों एवं जलाशयों द्वारा वर्षाजल के संरक्षण एवं जलीय स्थलाकृति पारिस्थितिकी का अपूर्व वर्णन है। प्रवाहित होते हुए वर्षाजल को विभिन्न माध्यमों से अवरुद्ध कर उसकी गति धीमी

करने से भूमिगत जलस्रोतों का पुनर्भरण होता है। महाकाव्य के जलविहार प्रसंग में यादवाङ्गनाओं के सौन्दर्य वर्णन में अनेक प्रकार से अवरोध वाला मन्दगति जलप्रवाह का आरोप चित्ताकर्षक रूप से वर्णित है। सरोवर के समान गहरी नाभियों से अवरुद्ध, स्थूल जंघा रूपी सेतुओं से अवरुद्ध, मण्डूकवाद्य की ध्वनि को उत्पन्न करता हुआ जल प्रवाह जो स्तनप्रान्त से स्खलित हुआ था वह जल मन्दगति से बह रहा था। वस्तुतः बहते हुए जल की गति धीमी करना ही जलसंरक्षण कहलाता है।

नाभिह्रदैः परिग्रहीतरयाणिनिम्नैः
स्त्रीणां बृहज्जघनसेतुनिवारितानि।
जग्मुर्जलानि जलमड्डुकवाद्यवल्गु-
वल्गद्घनस्तनतटस्खलितानि मन्दम्।।

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर युवतियों पर नदी तथा उनके अंगों पर प्रवाह का आलंकारिक वर्णन किया गया है। विशेष रूप से नाभि एवं सरोवर का साम्य अधिकांशतः वर्णित है। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर, बरसाती नदियाँ भी सूख जाती हैं परन्तु सदानीरा नदियाँ शीतकाल में भी इतना जल धारण करती थीं कि उनमें बड़े-बड़े हाथी भी डूब जायें। महाकाव्य में वर्णित जलीय भू-आकृतियों में नैसर्गिक तथा कृत्रिम दोनों का वर्णन किया गया है। प्रभूतजलराशि सम्पन्न विशाल सरोवर, जलाशय, जलधि (लहरों वाला जलाशय), ह्रद, वापी, पुष्करिणी तथा कूप का वर्णन किया गया है। प्रभातवेला में सूर्योदय का वर्णन करते हुए महाकवि माघ ने दिशाओं द्वारा किरणरूपी रज्जुओं से सूर्यरूपी घट को (कूप से) खींचने की उत्प्रेक्षा अत्यन्त हृदयावर्जक है :

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान्
दिग्भिराकृष्यमाणाः।
कृतचपलविहङ्गलापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष
उत्तार्यतेऽर्कः।।

अदेवमातृका कृषि में विभिन्न जलाधारों के जल से खेतों और उद्यान-उपवनों में सिंचाई की जाती है। शिशपालवध के त्रयोदशसर्ग में मयासुर द्वारा निर्मित सभाभवन के निकट एक ऐसे वृक्ष का वर्णन किया गया है, जिसके आलवाल में उसका पूरा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा है। आलवाल के परिमाण का ऐसा वर्णन अनन्य है :

विपुलाऽऽलवालभृतवारिदर्पणप्रतिमागतैरभिविरेजुरात्मभिः।
यदुपान्तकेषु दधतो महीरुहः सपलाशराशीमिव मूलसंहतिम्।।

शिशुपाल के दूत द्वारा प्रस्तुत श्लिष्ट सन्देश में वृक्ष का राजाओं के साथ श्लेष करते हुए उसके आलवाल-मण्डल में रन्ध्र देखकर भेद डालकर उसे जड़ सहित नष्ट करने का वर्णन किया गया है। वृक्षों को अतिशय जलप्रवाह अथवा बाढ़ से तथा दावाग्नि से ख़तरा होने का भी वर्णन महाकाव्य में किया गया है।

भूसंस्कार, वपन-रोपण, सिंचन, पोषण, रक्षण के उपरान्त पकी फ़सल को काटने के बाद उसका निर्बुसीकरण किया जाता है। जिस प्रकार धान की लावणी करने के बाद उसे निर्वुस करने के लिए किसान शक्तिशाली वायु की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार सम्पूर्ण यज्ञीय सामग्री एकत्र करके निर्दोष यज्ञ की अभिलाषा से युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे थे :

सम्भृतोपकरणेन निर्मलां कर्तुमिष्टिमभिवाञ्छता मया।
त्वं समीरण इव प्रतीक्षितः कर्षकेण वलजान् पुपूषता।।

महाकवि माघ को पादप-जीवन तथा उसके रचनाविज्ञान का भलीभाँति ज्ञान था। काव्य में विभिन्न उपमा और उत्प्रेक्षाओं में इनका भरपूर उपयोग किया गया है। चतुर्दश सर्ग के वर्णन में युधिष्ठिर स्वयं को धर्ममयवृक्ष कहते हैं जिसके मूल के रूप में श्रीकृष्ण प्रतिष्ठित हैं :

सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः कुर्वनुग्रहमनुज्ञया मम।
मूलतामुपगते प्रभो त्वयि प्रापि धर्ममयवृक्षता मया।।

इसी प्रकार राजसभा क्रोध के कारण नेत्र की पुष्पों से, फड़कते हुए ओंठों की पत्तों से, कम्पित भुजाओं की लताओं से तथा राजाओं की वृक्षों से समरूपता दिखाई गयी है।

'स्त्रियाँ वैररूपी वृक्ष की जड़ होती हैं' रुक्मिणीहरण कर शिशुपाल को शत्रु बनाने के वर्णन में वृक्ष तथा मूल दोनों को लेकर अर्थान्तरन्यास बना है :

त्वया विप्रकृतश्चैद्यो रुक्मिणीं हरता हरे!।
बद्धमूलस्य मूल हि महद्वैरतरोः स्त्रियः।।

अन्यत्र उद्धव द्वारा संवाद में कहा गया है कि बुद्धिरूपी गहरी जड़ों से ही मन्त्रशक्ति वाला उत्साह रूपी वृक्ष पनपता है, जो अनेक प्रभुशक्तियों के फल प्रदान करता है। जड़ की गहराई वृक्ष की सम्पन्नता का कारक होती है :

कर प्रचेयशमुतुङ्गप्रभुशक्तिं प्रथीयसीम्।
प्रज्ञाबलबृहन्मूलः फलत्युत्साह पादपः।।

वृक्षों के स्कन्ध, शाखा, स्तम्भ आदि के अनेकशः वर्णन किये गये हैं। रैवतक पर्वत पर स्थित वृक्षों की शाखाओं पर भ्रमरों से आछन्न पुष्पवती लताएँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं जैसे अङ्गनाएँ पति के कन्धे पर हाथ रख कर शोभित हो रही हों :

पुरः पतिस्कन्धनिषण्णबालप्रवालहस्ताः प्रमदा इवात्र।
पुष्पेक्षणैर्लम्बितलोचकैर्वा मधुव्रतव्रातवृतैर्व्रतत्यः।।

इसी प्रकार पत्र, पुष्प, पराग, सौरभ तथा उनकी शोभा का वर्णन है। वसन्त ऋतु में वृक्षों की प्रसवश्री दर्शनीय होती है। महाकवि माघ वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम नवीनपल्लवयुक्त पलाशवन वाले, प्रफुल्लित मकरन्द से परिपूर्ण कमलों वाले, मृदुल एवं कुछ म्लान पुष्पों वाले, पुष्प सुवास से युक्त वसन्त को देखा। यमक अलंकार का वह सुप्रसिद्ध उद्धरण है :

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनो भरैः।।

माघ की पादप संरचनाओं में पुष्पस्तबक, मंजरी, केशर किसलय कलिका, कोरक आदि का उल्लेख उनकी शास्त्रीय बहुज्ञता का प्रमाण है। कमलों के निमीलन और विकसन, भ्रमर तथा वायु द्वारा परागण-निषेचन आदि प्रक्रियाओं का भी प्रौढ़ अभिज्ञान महाकाव्य में प्रदर्शित है।

शिशुपालवध महाकाव्य में महाकवि माघ ने प्रसंगवश खेती, बागवानी तथा वन्य उपजों-फ़सलों अथवा इनकी प्रजातियों का प्रचुर उल्लेख किया है। ये उपज उर्वर, पर्वतीय, ऊसर, तटीय भूमि-भागों तथा जलीय वातावरण में उत्पन्न होती हैं, जो अन्न, फल, पुष्पादि के रूप में उपयोगी होती है। महाकवि माघ ने खाद्यान्न उपज के रूप में धान का उल्लेख किया है जो ब्रीहि, कलम शालि, सस्य शब्दों द्वारा वर्णित है।

महाकवि माघ ने तटीय तथा कच्छ प्रदेश में एलालता, लवंग, नारियल, सुपारी, तमाल, ताम्बूल, कदल का वर्णन किया है साथ ही चन्दन का भी उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अन्यत्र भूभागों में होने वाले फलदार, काष्ठोपयोगी तथा फूलदार वृक्षों-पादपों तथा लताओं का वर्णन किया है। इनमें सप्तछद, जम्ब कदम्ब आम्र (चूत), पलाश (किंशुक), अशोक, सागवान (शाकपलाश), पारिजात, लोध्र, सन्तानक (कल्पवृक्ष), पिचुमर्द, (बकायन-नीम), हरिचन्दन, शिरीष बकुल, चम्पक, कुरबक, बन्धूक (जीवक), कुटज, प्रियक (असन-विजयसार), दाडिम, कुसुम्भ, कुंकुम (केशर), कोशातकी (परवल), पटोली (कटसरैया-धारडीही), जवा (जपापुष्प), नवमल्लिका, कन्दली (भूकन्दली), द्रोणपर्णी, केतकी, मालती (जाति), फलिनी (प्रियंगुलता), कुन्दलता, यूथिका (जूही), कलायकुसुम, गुंजा, माधवीलता, अतसी, नीली (औषधि) पादपों का वर्णन किया गया है। महाकवि माघ ने इक्षु का भी उल्लेख किया है। इक्षु को एक स्थान पर कादम्ब भी कहा गया है जो मद्यनिर्माण के लिए प्रयुक्त होता है। बाँस तथा घास के अनेकशः वर्णन है जो कीचक, त्वक्सार, हरितक (चारा), शष्प, तृण काश, दर्भ उलप, दूर्वा के रूप में वर्णित है। उपर्युक्त में से अधिकांश (फलदार-फूलदार) पादप उद्यानिकी अथवा वागवानी के अन्तर्गत समाहित होते हैं। शिशुपालवध में ये उपवन कुंज, निकुंज, लताकुंज आदि के शब्दों द्वारा व्यवहृत हुए हैं।

शिशुपालवध महाकाव्य में जिस पादप-पुष्प का सर्वाधिक वर्णन है वह कमल है। कमल तथा कमलिनी के सभी प्रकार यहाँ वर्णित हैं। इनमें सहस्रदलकमल (कुशेशय), नीलोत्पल (नीलकमल), पुण्डरीक (श्वेतकमल), अरविन्द (लालकमल, उत्पल) नलिनी (पद्मिनी), कुमुद्वती (कुमुदनी, कुमुद) का अनेकशः वर्णन किया गया है। मृणाल तथा शैवाल भी जलीय पादपांश और पादप हैं, जिनका प्रयोग किया जाता है।

महाकवि माघ की कृषिशास्त्रीय बहुज्ञता अथवा निपुणता प्राचीन कृषिशास्त्रीय परम्परा तथा पारिस्थितिकी के सर्वथा अनुरूप है। महाकाव्य के आलंकारिक सौन्दर्य में लोक एवं शास्त्र की अपूर्व विदग्धता एवं उसका चरम निदर्शन है। प्रसंगतः आये कृषि सम्बन्धी विविध पक्षों का निरूपण इस महाकाव्य में तत्सम्बन्धी शब्दावली के महाकोश को भी पाठकों के समक्ष चमत्कृत रूप में उपस्थित करता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तत्कालीन भारतीय पर्यावरण-भूगोल के सन्दर्भ में कृषि तथा सम्बन्धित लोक एवं शास्त्रीय परम्पराओं को महाकवि माघ ने अपूर्व शब्दावली में अनुगुंफित कर विदग्धशैली में उपस्थापित किया है। महाकवि माघ प्रणीत इस महाकाव्य के पठन-पाठन से उनके प्रखर पाण्डित्य की महिमा का युग-युगान्तर तक गान होता रहेगा।

सन्दर्भ

शिशुपालवध, सं. डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2013

संस्कृत कृषिशास्त्र : समग्र अनुशीलन, प्रो. नीरज शर्मा, पृ. 405 (शोध प्रबन्ध)